॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

कृष्णयजुर्वेदीय

ब्रह्मबिन्दूपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

मनके लयका साधन; आत्माका स्वरूप तथा ब्रह्मकी प्राप्तिका उपाय

ॐ। मन दो प्रकारका बताया गया है, एक तो शुद्ध मन और दूसरा अशुद्ध। जिसमें कामनाओं—विषय-भोगोंके संकल्प उठते रहते हैं, वह अशुद्ध मन है; तथा जिसमें कामनाओंका सर्वथा अभाव हो गया है, वही शुद्ध मन है। मनुष्योंका मन ही उनके बन्धन और मोक्षका कारण है। विषयासक्त मन बन्धनका और विषय-संकल्पसे रहित मन मोक्षका कारण माना गया है। क्योंकि विषय-संकल्पसे शून्य होनेपर ही इस मनका लय होता है, इसलिये मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाला साधक अपने मनको सदा विषयोंसे दूर रखे। जब मनसे विषयासक्ति निकल जाती है और वह हृदयमें स्थिर होकर उन्मनीभावको प्राप्त (संकल्प-विकल्पसे रहित) हो जाता है, तब वही परम पद है। मनको तभीतक रोकनेका प्रयत्न करना चाहिये, जबतक कि वह हृदयमें ही विलीन नहीं हो जाता। मनका हृदयमें लय हो जाना—यही ज्ञान और मोक्ष है; इसके सिवा जो कुछ है, वह ग्रन्थका विस्तारमात्र है। जब न तो कोई चिन्तनीय रह जाय और न अचिन्तनीय ही रह जाय, चिन्तनीय तथा अचिन्तनीय दोनोंमेंसे किसीके प्रति भी मनका पक्षपात न रह जाय, उस समय यह साधक ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है। स्वर अर्थात् प्रणवके साथ परमात्माकी एकता करे और फिर प्रणवसे अतीत परम तत्त्वकी भावना (चिन्तन) करे। प्रणवातीत तत्त्वकी उस भावनाके द्वारा भावस्वरूप परमात्माकी ही उपलब्धि होती है, अभावकी नहीं। अर्थात् उसके बिना समाधि शून्यरूप ही होती है। वही कलाओंसे रहित अर्थात् अवयवहीन, विकल्पशून्य एवं निरञ्जन—मायारूप मलरहित ब्रह्म है। 'वह ब्रह्म मैं हूँ' यों जानकर मनुष्य निश्चय ही ब्रह्म हो जाता है। विकल्प-शून्य, अनन्त, हेतु और दृष्टान्तसे रहित, अप्रमेय तथा अनादि परम कल्याणमय ब्रह्मको जानकर विद्वान् पुरुष अवश्य ही ब्रह्मरूप हो जाता है॥ १—९॥

न संहार है न सृष्टि; न बन्धन है न उससे छूटनेका उपदेश; न मुक्तिकी इच्छा है न मुक्ति। ऐसा निश्चय होना ही परमार्थबोध (यथार्थ ज्ञान) है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओंमें एक ही आत्माका सम्बन्ध मानना चाहिये। जो इन तीनों अवस्थाओंसे अतीत हो गया है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। सम्पूर्ण भूतोंका एक ही अन्तर्यामी आत्मा प्रत्येक प्राणीके भीतर स्थित है। पृथक्-पृथक् जलमें प्रतिबिम्बित होनेवाले चन्द्रमाकी भाँति वही एक और अनेक रूपोंमें दृष्टिगोचर होता है। घटमें आकाश भरा है; किंतु घटके फूट जानेपर जैसे केवल घड़ेका ही नाश होता है, उसमें भरे हुए आकाशका नहीं, उसी प्रकार देहधारी जीव भी आकाशके ही समान है—शरीरके नाशसे आत्माका नाश नहीं होता। जीवोंका यह भिन्न-भिन्न प्रकारका शरीर घटके ही सदृश है, जो बारम्बार फूटता या नष्ट होता रहता है। यह नष्ट होनेवाला जड शरीर अपने भीतर परिपूर्ण चिन्मय ब्रह्मको नहीं जानता, परंतु वह सर्वसाक्षी परमात्मा सब

शरीरोंको सदा ही जानता रहता है। जीवात्मा जबतक नाममात्रका अस्तित्व रखनेवाली मायासे आवृत है, तबतक हृदय-कमलमें बद्धकी भाँति स्थित रहता है; जब अज्ञानमय अन्धकारका नाश हो जाता है, तब ज्ञानके आलोकमें विद्वान् पुरुष जीवात्मा और परमात्माकी नित्य एकताका ही दर्शन करता है॥ १०—१५॥

शब्दब्रह्म (प्रणव) भी अक्षर है और परब्रह्म भी अक्षर है। इनमेंसे जिसके क्षीण होनेपर जो अक्षय बना रहता है, वह (परब्रह्म) ही वास्तवमें अक्षर (अविनाशी) है। विद्वान् पुरुष यदि अपने लिये शान्ति चाहे तो उस अक्षर परब्रह्मका ही ध्यान करे। दो विद्याएँ जाननेयोग्य हैं—एक तो वह, जिसे 'शब्दब्रह्म' कहते हैं और दूसरी वह, जो 'परब्रह्म' के नामसे प्रसिद्ध है। 'शब्दब्रह्म' (वेद-शास्त्रोंके ज्ञान)-में पारङ्गत होनेपर मनुष्य परब्रह्मको जान लेता है। बुद्धिमान् पुरुष ग्रन्थका अभ्यास करके उससे ज्ञान-विज्ञानके तत्त्वको ग्रहण कर ले, फिर समूचे ग्रन्थको त्याग दे—ठीक उसी तरह, जैसे धान्य—अन्न चाहनेवाला मनुष्य अन्नको तो ले लेता है और पुआलको खलिहानमें ही छोड़ देता है। अनेक रंग-रूपोंवाली गौओंका भी दूध एक ही रंगका होता है। इसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष विभिन्न साम्प्रदायिक चिह्नोंको धारण करनेवाले पुरुषोंके ज्ञानको भी गौओंके दूधकी भाँति एक-सा ही देखता है। बाह्य चिह्नोंके भेदसे ज्ञानमें कोई अन्तर नहीं आता। जैसे दूधमें घी छिपा रहता है, उसी प्रकार प्रत्येक प्राणीके भीतर विज्ञान (चिन्मय ब्रह्म) निवास करता है। जिस प्रकार घीके लिये दूधका मन्थन किया जाता है, वैसे ही विज्ञानमय ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये मनको मथानी बनाकर सदा मन्थन (चिन्तन और विचार) करते रहना चाहिये। तदनन्तर ज्ञानदृष्टि प्राप्त करके अग्निके समान तेजोमय ब्रह्मका इस प्रकार अनुभव करे कि 'वह कलाशून्य, निर्मल एवं शान्त परब्रह्म मैं हूँ।' यही विज्ञान माना गया है। जिसमें सम्पूर्ण भूतोंका निवास है, जो स्वयं भी सम्पूर्ण भूतोंके हृदयमें निवास करता है तथा सबपर अहैतुकी दया करनेके कारण प्रसिद्ध है, वह सर्वात्मा वासुदेव मैं हूँ, वह सर्वात्मा वासुदेव मैं हूँ। इस प्रकार यह उपनिषद् पूर्ण हुई॥ १६—२२॥

॥ कृष्णयजुर्वेदीय ब्रह्मबिन्दूपनिषद् समाप्त॥

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

निश्चयके अनुसार ब्रह्मकी प्राप्ति

सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादर एष म आत्माऽन्तर्हृदय एतद् ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभिसम्भविताऽस्मीति यस्य स्यादद्धा न विचिकित्साऽस्तीति ह स्माऽऽह शाण्डिल्यः शाण्डिल्यः।

(छान्दो० ३। १४। ४)

शाण्डिल्य ऋषिके ये वचन हैं—जो सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगन्ध, सर्वरस, समस्त विश्वमें सर्वत्र व्याप्त, वाक्‌रहित और सम्भ्रमशून्य है, वह मेरा आत्मा हृदयमें सदा विराजमान है। यही ब्रह्म है। इस शरीरको छोड़कर जानेपर मैं इसी परब्रह्मको प्राप्त हो जाऊँगा। जिसका ऐसा दृढ़ विश्वास है, जिसको इसमें कोई संदेह भी नहीं है (उसे इसी ब्रह्मकी प्राप्ति होती है)।